International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9 Issue 4, April 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gage as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

नागार्जुन के जनगीतों में लोकमन

:डॉ. राजेश कुमार

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,

रामलाल आनंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्याल

जनचेतना के प्रहरी कवि नागार्जुन का प्रगतिशील साहित्य में विशिष्ट स्थान है। मानवीय चेतना के संघर्ष, युगबोध–सजगता, वर्तमान परिवेश मे यथार्थ–बोध, प्रेम–प्रकृति सौंदर्य के प्रति नवीन दृष्टिकोण, समृद्ध सांस्कृतिक चेतना, शोषण व अन्यायपूर्ण परिस्थितियों के प्रति आक्रोश, व्यंग्य आदि विशेषताओं से युक्त उनके गीतों का एक अलग सौंदर्यशास्त्र है, जिसे उन्होंने जनता के बीच रहकर गढ़ा है। विष्णु खरे ने नागार्जुन को 'वाल्टविटमेन' की संज्ञा देते हुए लिखा है, 'नागार्जुन जनता के सहस्रों मूढ़ के कवि हैं .....निराला के बाद हिन्दी के अनेक कवि जनता से जुड़े हुए हैं, ... लेकिन मुझे यह लगता रहा है कि जहाँ हमारे अधिकांश सजग कवि सामान्यजन के बारे में लिखते हुए भी एक अनजानी–अनचाही दूरी बनाए रखते हैं, नागार्जुन स्वयं जनता से निकले हुए कवि हैं ....उन्होंने विराट् जनसमूह में स्वयं को तिरोहित कर लिया है।'[1]सामान्य जन के साथ यह जुड़ाव ही उनके काव्य में लोकोन्मुखता की प्रवृति को दृढ़ करता है।

नागार्जुन जन–मन के सजग चितेरे हैं। जनगीतकार के रूप में उनका ऐतिहासिक महत्त्व है। अपनी गत्यात्मकता रचनाशीलता के जरिए वर्तमान की भयावहता से निरंतर जूझती बहुसंख्यक श्रमजीवी जनता के संघर्षों, उसकी पीढ़ा, दुःख, विवशता को वाणी दी है।

जनगीतकारों ने प्रगतिशील कविता के दायित्व बोध को स्वीकार किया है तथा उसके माध्यम से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक अन्याय के विरूद्ध आक्रोश, क्षोभ व रोष व्यक्त किया है। आजादी से पहले 'रामराज्य' का जो स्वप्न भारतीय जनता ने देखा था, आजादी के बाद वही जीवन के व्यंग्य के रूप में सामने आया। नागार्जुन ने मोहभंग की इस कारूणिक स्थिति के माध्यम से लोक 'मौन' को मुखर अभिव्यक्ति दी–

'रामराज्य में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है।

सूरत शक्ल वही है भैया बदला केवल ढाँचा है।

नेताओं की नीयत बदली फिर तो अपने ही हाथों

भारत माता के गालों पर कसकर पड़ा तमाचा है।'

(हंस, जून 1984)

आपात स्थिति ने सत्ता का असली चेहरा सामने रख दिया। डॉ. कर्णसिंह चौहान ने लिखा है, 'व्यवस्था जब भी विरोध से बौखलाएगी हथियार का सहारा लेगी। अतः यह कहना तो सही है कि आपातकाल के अनुभव ने सत्ता का असली स्वरूप लोगों के सामने खोलकर रख दिया, यह भी अच्छी बात है कि उस अनुभव ने स्वतंत्रता की कीमत को पहचाना।'[2] नागार्जुन के प्रगतिशील कवि मन ने इन दमनकारी परिस्थितियों में भी रचना के मूलभूत स्वर को बनाए रखा।

नागार्जुन समय के अनुसार बड़े ही सार्थक संकेत देते हैं और यह भी बताते हैं कि इस भयानक संकट से संगठित होकर ही उभर सकते हैं। जनता की भागीदारी ही समाज परिवर्तन में सहायक होगी। वे लिखते हैं–

'गोबर महंगू बलचनमा और चतुरी चमार

सब छीन ले रहे स्वाधिकार

टागे बढ़कर सब जूझ रहे

रहनुमा बन गए लाखों के

अपना त्रिशंकुपन छोड़ इन्ही का साथ ले रहा मध्यवर्ग।'

(पुरानी जुतियों का कोरस)

वास्तव में 'गोबर', 'महंगू', 'बलचनमा' और 'चतुरी चमार' लोक जीवन के वे स्तंभ हैं जो युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। रास्ते में आने वाली बाधाओं से जूझकर उन्हें हासिल करना इन्हें अच्छी तरह आता है। धीरे धीरे इस युवा ब्रिगेड का साथ देने वाले हजारों–लाखों की संख्या में लोग उनके साथ हों लेते हैं।

कवि, समाज की जड़ों को कमजोर करने वाले तत्त्व की तह तक पहुँच चुके थे। इसलिए आतंक और दमन की स्थिति में अपनी बात कहने के उन्होंने नये रास्ते तलाशे हैं। एक ईमानदार रचनाकार के रूप में जन–प्रतिबद्धता इनके काव्य में देखी जा सकती है–

'जन कवि हूँ, क्यों चाटूँगा थूक तुम्हारी

श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ बंदूक तुम्हारी।'

(खिचड़ी विप्लव हमने देखा)

इस संबंध में डॉ. कर्ण सिंह चौहान का मत है कि 'यदि लेखक आजादी के सवाल पर ईमानदार है वह वास्तविक आजादी की तलाश में है तो आजादी को सम्पूर्ण आयामों में पहचानना होगा। संघर्षरत जनता के संघर्ष द्वारा ही उसकी कामना करनी होगी।'[3]संघर्षरत जन के प्रति यह संबद्धता नागार्जुन साहित्य पर प्रचारात्मक होने के आक्षेप का कारण बनती रही है किंतु जब कोई रचना सामान्य 'जन' से जुड़ेगी, उसकी समस्याओं और दुःखों की अभिव्यक्ति करेगी तो ऐसा होना स्वाभाविक है। 'रचनात्मक सृजनात्मक स्तर पर राजनीति कहीं–न–कहीं किसी न किसी रूप में जीवन का अनिवार्य अंग होने के कारण लेखक से जुड़ जाती है। सामाजिक वास्तविकता को उजागर करने के लिए कवि राजनीति से रचनात्मक स्तर पर गहरा सरोकार रखता हुआ दिखाई देता है।'[4]

नागार्जुन के गीत धरती और उसके जनसमुदाय से जुड़े हैं। ये प्रकृति और जीवन की एकाकार रूप में कल्पना करते हैं। प्रकृति से उन्हें इतना लगाव है कि वे प्रकृति के साहचर्य में रहकर उसी में घुल–मिलकर एकमेक हो जाना चाहते हैं–

'भीनी–भीनी खुशबू वाले

रंग बिरंगे

यह जो इतने फूल खिले हैं .....

पकी सुनहली फसलों से जो

अब की यह खलिहान भर गया

मेरे रग–रग की शोणित बूँदें इसमें मुस्काती हैं।

मेरी भी आभा है इसमें।'

(प्यासी पथराई आँखें)

किसान के श्रम से सिंचित यह पकी सुनहली फसल मानवीय श्रम की महत्ता को बताती है। स्वयं कवि की आभा का फसल में एकाकार होना प्रकृति और श्रम का एक होना है।

प्राकृतिक परिवेश मानव परिस्थितियों से जुड़ा हुआ है। समाज की विकृतियाँ, विषमताएँ प्रकृति के माध्यम से प्रभावी रूप में अभिव्यक्ति पाती हैं। 'अकाल और उसके बाद' कविता में नागार्जुन की यह लोकसंवेदना मानवीय संदर्भों से जुड़कर अकाल की भयावहता की जड़ता, मूकता और उसके पश्चात की स्थिति परिवर्तन का रूप हमारे सामने रखती है–

'कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास

कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास।'

(सतरंगे पंखों वाली)

नागार्जुन लोकजीवन में सामंतवाद के घोर विरोधी हैं, ये किसान और मजदूर वर्ग के पक्षधर हैं। विजयदशमी के अवसर पर मिथिलांचल में लगने वाले मेले में लोगों की वेशभूषा और रूचियों के माध्यम से सामंती वर्ग की मानसिकता पर भी प्रहार करते हैं–

'गुलाबी धोती

सीप की बटनों वाला रेशमी कुर्ता

मलमल की दुपलिया, फूलदार टोपी

बाटा के पम्प शू

नेवल की मुँह–सी मूठ की नफीस छड़ी ....

बड़ा और छोटा सरकार .....

मानिक जी, मोती साहेब

बुच्चन जी, बबुअन जी

नूनू जी, बचोल बाबू

हवेली से निकले बनकर, सँवरकर।'

(युगधारा)

यहाँ कवि की गहरी लोकसंसक्ति ही नहीं वरन् उनका सामंतवादी रूप भी उभरकर सामने आया है। नये भौतिक औद्योगिक परिवेश में उच्च वर्ग को जिन मेहनतकश लोगों से घिन आती है वही असुंदरता नागार्जुन के लिए सौंदर्य का पर्याय रही है। मेहनतकश श्रमजीवी जीवन के यथार्थ को वाणी देती 'घिन तो नहीं आती' गीत कविता अभिजात वर्ग के सफेद लिबास की कलुषता का बखान करती है। निराला की 'अन्याय जिधर है उधर शक्ति' की भाँति नागार्जुन का 'काली माई' व्यंग्य गीत धन और धर्म के समीकरण के रूप में गरीबों के शोषण, अभाव की गाथा कहता है। सदियों से शोषित, पीड़ित मनुष्य भी कालीमाई की कृपा का पात्र नहीं है। कालीमाई भी अपनी इच्छापूर्ति के लिए इसी वर्ग पर निगाह रखे हुए है। धर्म के नाम पर गरीबों को ही बलि का बकरा बनाया जाता है–

'मुंडकाल के लिए गराबों पर निगाह है

धनपतियों के लिए दया की खुली राह है।

धनपिशाच का लहू नहीं अच्छा लगता है

वह औरों की बलि देकर तुमको ठगता है

जाने कब से टपक रही है लार तुम्हारी

लाल थूक से दरक गई धरती बेचारी।'

(प्यासी पथराई आँखे)

नागार्जुन के सृजन में व्याप्त सामाजिक बोध जीवन संदर्भों की अभिव्यक्ति से निर्मित हुआ है। 'जन' के प्रति यह संबद्धता ही इनके जनधर्मी गीतों का विस्तार, जिनमें लोकमन की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। कवि समाज में व्याप्त विसंगतियों, विकृतियों के माध्यम से न केवल यथार्थ की तस्वीर प्रस्तुत करता है वरन् उसमें परिवर्तन की माँग करता है, एक सुंदर स्वस्थ समाज–रचना की ओर अग्रसर है।

[1]आलोचना, अंक 56–57, पृ. 21–22
[2]साहित्य के बुनियादी सरोकार (कर्ण सिंह चौहान), पृ. 87
[3]वही, पृ. 89
[4]नया सृजन नया बोध, कृष्णदत्त पालीवाल, पृ. 210–211